# डॉ० सिद्धनाथ कुमार

*सिद्धनाथ कुमार (सन् 1927) : कवि, व्यंग्यलेखक, नाटककार और नाट्यसमीक्षक। **जन्म** : बक्सर, बिहार। **शिक्षा** : एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०। **कार्यक्षेत्र** : प्रारम्भ में आकाशवाणी में, फिर अध्यापन। (हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय से प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त) सम्प्रति, स्वतंत्र लेखन। **कृतित्व : काव्य** : टूटा हुआ आदमी, जिन्दगी तुम कहाँ हो? **व्यंग्य** : कमाल कुर्सी का, चमचे वही रहे, मिले सुर मेरा तुम्हारा, मियाँ-बीबी राजी तो। **शोध और आलोचना** : रेडियो-नाट्य-शिल्प, रेडियो नाटक की कला, रेडियो-वार्ता-शिल्प, हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास, प्रसाद के नाटकों का पुनर्मूल्यांकन, हिन्दी पद्यनाटक : सिद्धान्त और इतिहास, आधे अधूरे, संवेदना और शिल्प, अँधेर नगरी, संवेदना और शिल्प। **नाटक** : अशोक, सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य-नाटक, रंग और रूप, वे अभी भी क्वाँरी हैं, आदमी है नहीं हैं, मुर्दे जिएँगे, रास्ता बन्द है।*

*सिद्धनाथ कुमार ने विभिन्न विधाओं में सृजनात्मक एवं समीक्षात्मक लेखन किया है, पर इन्हें विशेष मान्यता नाटक के क्षेत्र में मिली है। डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में, 'सिद्धनाथ कुमार न केवल प्रसिद्ध नाट्य-समीक्षक हैं, सिद्ध नाटककार भी हैं।' इन्होंने विभिन्न प्रकार के नाटक लिखे हैं—रेडियो-नाटक, पद्यनाटक, रंगनाटक : पूर्णकालिक और एकांकी। विषय की दृष्टि से भी नाटकों में पर्याप्त वैविध्य है, पर अपने परिवेश और समय की दाहक स्थितियों और समस्याओं के प्रति जागरूकता इनके नाटकों की मूल चेतना है।*

*'**एक बेचैन आवाज़** आजादी के बाद देश में फैले भ्रष्टाचार पर एक बेबाक टिप्पणी है। शेखर-जैसे लोग देश की आजादी और भावी पीढ़ी की सुख-सुविधा के लिए अपनी जानें दे देते हैं तथा रतन-जैसे लोग सबकी सुविधाएँ हड़प कर अपनी तिजोरियों में बन्द कर लेते हैं। शेखर-जैसे शहीदों की आत्माएँ देश की दुर्दशा देख कर मर्माहत हैं। शेखर के ये शब्द "जिनके लिए मैं मरा, उनकी सुख-समृद्धि के लिए मैं बार-बार मरूँगा, अपने आदर्शों की हत्या नहीं होने दूँगा।" आस्था की गहराइयों से निकले हैं। रतन-जैसे समाजद्रोही के लिए ये भले शब्द मात्र हों, लेकिन सत्य तो यह है कि ये आज के आस्थाहीन युग में आस्था के मंत्र हैं। यही बेचैन आवाज़, यही तड़प हमारे युग की तड़प है। स्वप्न-शिल्प एकांकी के अन्त में एक ऐसी फंतासी में रूपान्तरित कर देता है जिसका प्रभाव पाठकों-दर्शकों पर देर तक जमा रहता है।' **['नई धारा', पटना]***

# एक बेचैन आवाज़

*सिद्धनाथ कुमार*

## पात्र

शेखर : देशभक्त शहीद

भोला : मजदूर

रतन : सम्पन्न नेता

प्रदीप : शेखर का पुत्र

विजय : रतन का पुत्र

[पर्दा खुलता है, तो रंगमंच पर बहुत हल्की रोशनी रहती है। नेपथ्य से मजदूरों के काम करने की आवाज़ आती है। एक मजदूर भोला कुदाल उठाये दिखायी पड़ता है। कुदाल चलाने को होता है, तभी शेखर की तेज आवाज रंगमंच के एक बाहरी कोने से सुनायी पड़ती है—शेखर प्रत्यक्षतः रंगमंच पर नहीं आता, उसके संवाद सुनायी पड़ते रहते हैं। स्थान निर्जन जैसा है। भोला सहसा रुक जाता है, और शेखर की बातों का जवाब देने लगता है। जिस क्षेत्र में नाटक प्रस्तुत किया जाये, वहाँ की बोली में भोला के संवाद बदले जा सकते हैं।]

शेखर : कौन मिट्टी खोद रहा है?—कौन है? मैं पूछता हूँ, कौन है?

भोला : यह आवाज़ कहाँ से आ रही है? किसकी आवाज़ है? कहीं कोई दिखायी नहीं पड़ता।

शेखर : जवाब देने के लिए मुझे देखना जरूरी है? जानना जरूरी है कि आवाज़ कहाँ से आ रही है? मैं पूछता हूँ, कौन हो तुम?

भोला : मुझे डर लगता है।

शेखर : डरने की कोई बात नहीं है। मैं किसी का अनिष्ट नहीं करता। मैं भटकती हुई आत्मा हूँ, एक बेचैन आवाज़ हूँ। मैं एक खोया हुआ आदमी हूँ—कितने वर्षों से शान्ति पाने के लिए तड़प रहा हूँ। घूम-फिरकर यहाँ आ जाता हूँ, तो थोड़ी शान्ति मिलती है। देखता हूँ यहाँ की धरती भी तुम खोद रहे हो।

भोला : मैं अपने मन से कुछ नहीं कर रहा हूँ। मुझे तो मालिक ने कहा है कि यह जमीन साफ कर दूँ, थोड़ा बराबर कर दूँ इसे, कल से इसमें काम लगेगा।

शेखर : कैसा काम लगेगा?

भोला : यहाँ कुछ बननेवाला है?

शेखर : क्या बननेवाला है?

भोला : मैं ठीक-ठीक नहीं बतला सकता। मैं अच्छी तरह जानता भी नहीं। मैं तो मजदूर हूँ, काम करना जानता हूँ, मिहनत-मजदूरी से किसी तरह रोजी-रोटी कमाता हूँ।

शेखर : कुछ भी तो सुना होगा तुमने कि यहाँ क्या बनने जा रहा है?

भोला : लोग कह रहे थे, यहाँ शहीदों का कुछ बनेगा।

शेखर : शहीदों का? *(जोर से हँसता है)* भागो मत। ठहरो। मैं तुम्हारा कुछ नहीं करूँगा। तुम्हारे-जैसे सीधे-सादे लोगों को आज़ाद और सुखी बनाने के लिए ही मैंने अपनी जान दी थी।

भोला : मुझे बहुत डर लग रहा है यह सब सुनकर।

शेखर : मैंने कहा न तुमसे, डरने की कोई बात नहीं है। क्या सुना तुमने? क्या कह रहे थे लोग? शहीदों का क्या बनेगा यहाँ?

भोला : याद करने के लिए कुछ बनेगा। क्या कह रहे थे लोग, वह तो मैं भूल गया।

शेखर : शहीदों का स्मारक बनेगा?

भोला : हाँ-हाँ, यही कह रहे थे।

शेखर : यह नहीं कह रहे थे कि किन शहीदों का?

भोला : जो आजादी की लड़ाई में मरे थे।

शेखर : *(हँसी)* बहुत अच्छे! बहुत अच्छे! मेरा देश मुझे अभी भूला नहीं है।

भोला : लोगों ने बहुत रुपया जुटाया है। मेरे मालिक ने बहुत दिया है। सब वही कर रहे हैं।

शेखर : कौन है तुम्हारा मालिक?

भोला : रतन बाबू उनका नाम है। यहाँ के बहुत धनी आदमी हैं।

शेखर : रतन बाबू! *(हँसी)* रतन को मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ। रतन मेरा साथी है। बहुत धनी आदमी हो गया है, जानता हूँ मैं। तरह-तरह के रोज़गार हैं उसके—उसी के बारे में कह रहे हो न?

भोला : हाँ, बहुत रोज़गार करते हैं।

शेखर : रोज़गार भी करता है, शहीदों का स्मारक भी बनवाता है। *(हँसी)* मुझे बहुत खुशी हुई सुनकर। मैं कब से उससे मिलने की सोच रहा था, लेकिन अब ज़रूर मिलूँगा। ज़रूर मिलूँगा उससे। इतना बड़ा काम कर रहा है वह! शहीदों को भूला नहीं है अभी! मुझे भी नहीं भूला होगा! मैं बधाई दूँगा उसे इस स्मारक के लिए। जाकर कह देना अपने मालिक से।

भोला : क्या कहूँगा मैं?

शेखर : कहना, मैं उससे बातें करना चाहता हूँ। नहीं, तुम्हें कुछ भी कहने की जरूरत नहीं। मैं खुद कहूँगा उससे। मैं बधाई दूँगा उसे। मेरे बेटे की हत्या करके मेरा स्मारक बनवा रखा है। *(ज़ोर की हँसी)*

*[अन्धकार से दृश्य परिवर्त्तन। सम्पन्नतासूचक एक सजा-सजाया कमरा। रतन टेबुल पर सिर झुकाये कुर्सी पर बैठा है। पहले शेखर की हँसी सुनायी पड़ती है, बाद में अँधेरे के भीतर से उसकी धुँधली आकृति दिखायी पड़ती है।]*

*(शेखर की हँसी सुनायी पड़ती रहती है)*

रतन : यह किसकी हँसी सुन रहा हूँ?

शेखर : मेरी।

रतन : कौन हो तुम?

शेखर : मुझे पहचानते नहीं?

रतन : मैं तुम्हें कहीं देख नहीं रहा हूँ। कमरे में कहीं कोई नहीं है। कौन हो तुम? कहाँ से बोल रहे हो?

शेखर : तुम्हारे कमरे में हूँ। तुम्हारी आँखों के सामने।

रतन : मैं तो नहीं देख रहा हूँ।

शेखर : आँखें खोलो रतन! सामने देखो।

रतन : ठहरो, बत्ती जलाता हूँ।

शेखर : बत्ती जलाने की जरूरत नहीं, मुझे यों भी पहचान सकते हो। इस सजे-सजाए कमरे में मुझे पहचानते तुम्हें डर लगता है?

रतन : मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। इस कमरे में सिर्फ मैं ही तो हूँ, और कोई यहाँ है नहीं। अँधेरे में कहीं कुछ दिखायी नहीं पड़ता। तुम हो कौन? कहाँ से आ रही है तुम्हारी आवाज़?

शेखर : तुम्हारे सामने से। अपने सामने देखो रतन, यहाँ, ठीक सामने। अँधेरे में भी तुम्हें दिखायी पड़ेगा। देख रहे हो मुझे?

*[शेखर की आकृति उभरती है]*

रतन : हाँ, अब कुछ-कुछ दीख रहा है। अंधेरे में से एक उजला रंग उभर कर आ रहा है। पायजामा कुर्ता पहने एक आकृति मेरे सामने है।

शेखर : आकृति नहीं है वह, वह मैं हूँ।

रतन : तुम? कौन हो तुम?

शेखर : मुझे ठीक से देखो रतन!

रतन : तुम्हारे साफ कुर्ता पर, छाती पर, यह काला धब्बा कैसा है?

शेखर : तुम्हें सब जगह काला धब्बा ही दिखायी पड़ता है? यह काला धब्बा नहीं है—मैंने अपने जीवन पर कभी काला धब्बा नहीं लगने दिया, यह मेरी छाती से बहता हुआ लाल खून है।

रतन : लाल खून?

शेखर : खून से डरने लगे हो न? याद नहीं आता तुम्हें? मैंने आगे बढ़कर अपनी छाती पर यह गोली ले ली थी कि तुम्हारी जान बचे और तुम मौज की जिन्दगी बिताओ। *(हँसी)*

रतन : तुम्हें देखकर मुझे डर लगता है। तुम हो कौन? यहाँ आये हो क्या करने?

शेखर : मुझे देखकर तुम्हें डर लगेगा ही। मुझे पहचानते नहीं हो तुम? इतनी जल्दी भूल गये? मुझे देखो रतन, मुझे पहचानो।

रतन : तुम्हारा चेहरा अब साफ-साफ दीखने लगा है। मैं तुम्हें पहचान रहा हूँ, मैं तुम्हें पहचान रहा हूँ। शेखर, तुम?

शेखर : सचमुच मुझे पहचान रहे हो?

रतन : तुम्हें नहीं पहचानूँगा? तुम्हें कौन नहीं पहचानेगा इस देश में?

शेखर : देश की बात छोड़ो, अपनी बात कहो।

रतन : अपनी बात तो मैं कह ही रहा हूँ। पहले साफ-साफ देखा नहीं, नहीं तो मैं अपने शेखर को नहीं पहचानूँगा?

शेखर : लेकिन, मेरे बार-बार पुकारने पर भी तुमने मेरी आवाज़ नहीं पहचानी!

रतन : बहुत दिन हो गये न, आवाज नहीं पहचान सका। लेकिन आवाज न पहचानने से क्या हुआ, मैं तुम्हारा चेहरा पहचानता हूँ, मैं तुम्हें पहचानता हूँ।

शेखर : मुझे विश्वास नहीं होता।

रतन : तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ मैं? जिस शेखर के साथ मैंने आजादी की लड़ाई में कंधे से कंधा मिलाकर काम किया था, क्या मैं उसे कभी भूल सकता हूँ? मैं शेखर को नहीं पहचानूँगा? आज भी वे दिन मेरी आँखों के सामने है—सन् बयालीस के आन्दोलन के वे तूफ़ानी दिन मेरी आँखों में नाच रहे हैं।

*[नेपथ्य के स्वर उभरते हैं—जुलूस की आवाज़! शोरगुल। नारे: 'भारत माता की जय', 'महात्मा गाँधी की जय', 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आदि। भीड़ के कोलाहल की पृष्ठभूमि पर नेता का भाषण सुनायी पड़ता है।]*

स्वर : अब यह देश गुलाम नहीं रहेगा। पूरा देश जाग उठा है। देश का बच्चा-बच्चा आजादी का नारा लगा रहा है। अंग्रेजी राज को अब हम इस देश की धरती

से मिटाकर रहेंगे। अब हम आज़ादी लेकर रहेंगे। भारत माता के हाथों में सदियों से पड़ी बेड़ियाँ अब टूटेंगी। लेकिन, हमें याद रखना है, देश सबसे बड़ा होता है—घर और परिवार से बड़ा होता है, जाति और मजहब से बड़ा होता है, देश की आज़ादी दुनिया में सबसे बड़ी होती है। लेकिन किसी भी गुलाम देश को आज़ादी मुफ्त में नहीं मिलती। आजादी माँगती है त्याग—अपने स्वार्थों का त्याग, अपने सुखों का त्याग, अपने घर और परिवार का त्याग, अपने जीवन का त्याग! आज़ादी का मूल्य है खून! आज़ादी माँगती है बलिदान! कौन देगा बलिदान?

समबेत : हम देंगे।

*[भीड़ की आवाज कुछ मन्द पड़ती है। उसकी पृष्ठभूमि पर शेखर और रतन के संवाद नेपथ्य से सुनायी पड़ते हैं। प्रत्यक्षतः शेखर और रतन एक-दूसरे को देखते रहते हैं। शेखर के चेहरे पर आक्रोश और व्यंग्य के भाव हैं।]*

रतन : आज, लगता है, जरूर गोली चलेगी।

शेखर : गोली से डरता कौन है?

रतन : सरकार के हुक्म को तोड़कर यह जुलूस निकला है।

शेखर : अंग्रेजी सरकार के हुक्म को मानता कौन है?

रतन : कलक्टर के दफ्तर को भीड़ ने घेर लिया है। लेकिन सरकार ने भी कम इन्तजाम नहीं किया है। बन्दूक ताने सिपाही चारों ओर खड़े हैं।

शेखर : इससे डरते हो रतन?

रतन : डरूँगा क्यों? जो सर से कफन बाँध कर निकलता है, वह भी क्या गोलियों से डरता है?

शेखर : नहीं डरते, तो आओ, उस अंग्रेजी झण्डे को उतार फेंकें, वहाँ हमें तिरंगा झण्डा फहराना है।

रतन : यह काम खतरे से खाली नहीं है शेखर!

शेखर : खतरों से तो हमने अपनी जिन्दगी का सौदा ही किया है। चलो, डरने की क्या बात है?

रतन : पुलिस की आँखें उधर लगी हुई हैं!

शेखर : पुलिस से डरता कौन है? डरना ही रहता, तो हम भीड़ की अगली कतार में पहुँच आते।

*[फायर की आवाज होती है]*

रतन : उधर देखो शेखर, भीड़ को हटाने के लिए पुलिस फायर

शेखर : लोगों को डराने के लिए यह फायर हवा में हुई है। लेकिन, आजादी के दीवाने इससे डरनेवाले नहीं हैं।

रतन : पुलिस के रोकने पर भी लोग बढ़ते जा रहे हैं।

*[भीड़ की आवाज उभर कर आती है]*

शेखर : मैं कहता हूँ रतन, चलो, आगे बढ़ो, तिरंगा फहराओ।

*[गोली छूटती है]*

शेखर : आह!

रतन : क्या हुआ शेखर?

शेखर : मुझे गोली लग गयी!

रतन : लोग भाग रहे हैं। चलो, मैं तुम्हें टाँग कर लिए चलता हूँ।

शेखर : आह, अब मुझे कहाँ ले जाओगे? अब मैं बचूँगा नहीं। खून से आजादी की नींव पक्की हो, यही चाहता हूँ। मैं जानता हूँ रतन, मैं नहीं रहूँगा, लेकिन मेरा देश आजाद होकर रहेगा!

रतन : शेखर!

*[नेपथ्य के सम्वाद समाप्त होते हैं। शेखर जोर से हँस पड़ता है]*

रतन : तुम हँस रहे हो शेखर?

शेखर : क्यों, हँसने की बात नहीं है?

रतन : इसमें हँसने की बात क्या है?

शेखर : तुम कहते हो, मुझे पहचान रहे हो?

रतन : ठीक ही तो कह रहा हूँ। मैं तुम्हें पहचान रहा हूँ अच्छी तरह। मैंने कहा तुम से, आन्दोलन के वे तूफानी दिन आज भी मेरी आँखों के सामने नाच रहे हैं। गोली लगी तुम्हें, तब मैं तुम्हारे पास था। मेरी आँखों के सामने तुम देश के लिए शहीद हुए थे। तुम्हीं हो वह शेखर, मेरे साथी, मैं तुम्हें पहचानता हूँ।

शेखर : तो, तुम मुझे पहचानते हो?

रतन : जरूर।

शेखर : और, अपने को?

रतन : क्या मतलब?

शेखर : मुझे पहचानते हो तुम, लेकिन क्या तुम अपने को भी पहचानते हो?

रतन : क्या कह रहे हो तुम?

शेखर : तुमने कहा, मैं वही शेखर हूँ, लेकिन मैं तुमसे पूछता हूँ, क्या तुम वही रतन हो?

रतन : मैं कुछ समझ नहीं रहा हूँ।

शेखर : तुम नहीं समझोगे मेरी बातें। यह मैं तुम्हें समझाने आया भी नहीं हूँ। वह तो तुम्हें खुद समझना है कि क्या तुम वही रतन हो।

रतन : आज, अभी तुम आये हो क्या करने?

शेखर : आखिर पूछा तुमने मुझसे! मैं तुम्हें बधाई देने आया हूँ। *(हँसी)*

रतन : यह कैसी हँसी हँस रहे हो तुम? बधाई देने आये हो? किस बात की बधाई देने?

शेखर : तुम्हें नहीं मालूम?

रतन : साफ-साफ कहो।

शेखर : वह तो तुम्हें कहना चाहिए था मुझसे!

रतन : तुम्हारी बातें मैं समझ नहीं रहा हूँ।

शेखर : इतना बड़ा काम कर रहे हो, और तुम नहीं समझते कि किस बात की बधाई देने मैं तुम्हारे पास आ सकता हूँ!

रतन : काम तो कई कर रहा हूँ, किस काम के बारे में कह रहे हो?

शेखर : सुना मैंने, तुम शहीदों का स्मारक बनवा रहे हो। *(व्यंग्य की हल्की हँसी)* मैं तुम्हें बधाई देने आया हूँ!

रतन : इसमें बधाई की बात क्या है? वह तो मेरा कर्त्तव्य है।

शेखर : जरूर तुम्हारा कर्त्तव्य है!

रतन : जिन शहीदों के बलिदान से देश आजाद हुआ है, उन्हें याद करना मेरा ही नहीं, पूरे देश का कर्त्तव्य है। मैं गर्व का अनुभव करता हूँ कि शेखर-जैसा शहीद मेरा साथी था।

शेखर : काश, मैं भी गर्व कर सकता कि रतन जैसा देशभक्त मेरा साथी है!

रतन : तुम कहना क्या चाहते हो?

शेखर : कहना तो बहुत कुछ चाहता हूँ।

रतन : मैं शहीदों का स्मारक बनवा रहा हूँ, यह तुम्हें पसन्द नहीं है?

शेखर : *(हँसी)* मुझे पसन्द क्यों नहीं होगा? तुम शहीदों के सम्मान में स्मारक बनवा रहे हो, वह मुझे पसन्द क्यों नहीं होगा?

रतन : तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए शेखर, देश तुम्हें भूला नहीं है। पूरा देश शहीदों को याद करता है। उनका बलिदान निरर्थक नहीं गया, वे अमर हो गए हैं। स्मारक बन जाएगा, तो हर साल उन्हें यहाँ श्रद्धांजलि के फूल मिलेंगे। शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले!

शेखर : *(जोर की हँसी)* खूब कहा तुमने रतन! बहुत बुद्धिमान हो गये हो।

रतन : मैं गलत कह रहा हूँ?

शेखर : तुम गलत कैसे कहोगे? इतने बड़े आदमी हो तुम?

रतन : आखिर तुम इस तरह हँसते क्यों हो?

शेखर : मैं पूछता हूँ तुमसे, यह स्मारक मेरा बनवा रहे हो या अपना?

रतन : क्या पूछते हो तुम?

शेखर : पूछता हूँ, यह स्मारक शहीदों का है या तुम्हारा?

रतन : शहीदों का। इसमें भी सन्देह है तुम्हें?

शेखर : सन्देह क्यों होगा मुझे? मैंने वह पत्थर देखा है जो शहीदों के स्मारक पर लगेगा!

रतन : कैसा पत्थर?

शेखर : वही, जिस पर खुदा है—शहीदों के इस समारक का शिलान्यास श्री रतनचन्द्र के कर-कमलों द्वारा हुआ।

रतन : इसमें तुम्हें कोई एतराज है?

शेखर : *(हँसते हुए)* मुझे क्यों एतराज होगा रतन? तुम स्मारक बनवा रहे, उसमें तुम्हारा नाम होना ही चाहिए। लेकिन मैं पूछता हूँ, उस स्मारक में मैं कहाँ हूँ?

रतन : तुम? तुम अकेले तो नहीं हो। तुम्हारे साथ कितने लोग शहीद हुए थे। कितनों का तो नाम-पता भी मालूम नहीं है। कितने लोगों के नाम लिखे जा सकते हैं स्मारक में? वह सभी शहीदों का स्मारक है। और शेखर, तुम्हें भी नाम की जरूरत है?

शेखर : *(हँसते हुए)* यह तुमने ठीक पूछा! जो मर चुका है, उसे नाम की क्या जरूरत? नाम की जरूरत तो उसे है जो जिन्दा है। इसीलिए तो मैं तुम्हें बधाई देने आया हूँ रतन, इसीलिए तो! *(हँसी)*

रतन : इतनी छोटी-सी बात पर इतनी बड़ी हँसी! इसी के लिए तुम कष्ट उठा कर यहाँ आये हो? इसी के लिए तुम्हें मर कर जीना पड़ा है?

शेखर : जीना पड़ा है इसलिए कि सहने की सीमा होती है। इतने दिनों तक बेचैन तड़पता रहा हूँ, अपनी आँखों से देखता हूँ कि जिन आदर्शों के लिए मैंने अपने प्राणों की आहुति दी थी, उन्हीं की हत्या हो रही है, और उनकी हत्या में तुम भी शामिल हो।

रतन : यह क्या कह रहे हो तुम?

शेखर : जिस देश को सुखी बनाने के लिए मैंने अपने सर्वस्व का त्याग किया, जिसके लिए मैंने अपनी जान तक दे दी, उसका सुख छीनने में लोग लगे हुए हैं, और उन छीननेवालों में तुम भी शामिल हो।

रतन : नहीं, ऐसी बात नहीं है।

शेखर : तुम्हारे कहने से नहीं होता रतन! मैं अपनी आँखों से देखता रहा हूँ, आज भी देख रहा हूँ। मैं बहुत बेचैन रहा हूँ इतने वर्षों तक! अपने आदर्शों की हत्या देखकर, देश की सुख-समृद्धि की छीना-झपटी में लगे लोगों को देख-देखकर सचमुच ही मैं बहुत अशान्त रहा हूँ। इधर तीन-चार दिनों से मैं कितना बेचैन रहा हूँ, मैं कह नहीं सकता। आज जब मैंने सुना कि तुम शहीदों का स्मारक बनवा रहे हो तो मुझे लगा कि अब मुझसे अधिक सहा नहीं जा सकता!

रतन : लेकिन, मैं इसमें ग़लती क्या कर रहा हूँ?

शेखर : एक ओर यह शहीदों का स्मारक, और दूसरी ओर आदर्शों की हत्या—आदर्शों की ही नहीं, अपने देश के मनुष्यों की हत्या।

रतन : मनुष्यों की हत्या?

शेखर : हाँ रतन, मनुष्यों की हत्या! दर्द तो मुझे अपने देश के कितने ही निरीह मनुष्यों की हत्याओं को देखकर होता रहा है, लेकिन सबसे अधिक आहत हुआ मैं चार दिन पहले, जब मेरे बेटे प्रदीप को तुम्हारी गोली लगी।

*[नेपथ्य से भीड़ और नारों की आवाज उभरती है, गोली की आवाज सुनायी पड़ती है।]*

प्रदीप : आह!

*[सहसा अन्धकार से दृश्य-परिवर्तन। अन्धेरे में से प्रदीप की आकृति उभरती है।]*

शेखर : अब 'आह' कैसी बेटे? तुम तो संसार के इस पार हो अब!

प्रदीप : आप कौन हैं?

शेखर : तुम मुझे नहीं पहचानते होगे।

प्रदीप : आपको भी गोली लगी है क्या?

शेखर : गोली तो लगी ही है। देख नहीं रहे हो?

प्रदीप : देख तो रहा हूँ। मेरी छाती में भी गोली लगी है, आपकी भी छाती में।

शेखर : यही तो विडम्बना है बेटे! मैंने अपनी छाती पर गोली इसलिए नहीं ली थी कि तुम्हारी छाती में भी गोली लगे।

प्रदीप : मैं समझ नहीं रहा हूँ।

शेखर : यही तो मुझे पता नहीं चलता कि मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ।

प्रदीप : अनाज के लिए जो आन्दोलन हुआ है, आप भी उसी में गये थे?

शेखर : नहीं बेटे, मैं दूसरे आन्दोलन में गया था—वह भी आज नहीं, आज से बहुत वर्ष पहले!

प्रदीप : आपको यह गोली आज नहीं लगी है ?

शेखर : नहीं, आज नहीं लगी है—लगी थी, सन् बयालीस के आन्दोलन में।

प्रदीप : आप हैं कौन ?

शेखर : जब मुझे गोली लगी थी, तब तुम सिर्फ दो साल के थे। तुम मुझे पहचानोगे कैसे ? लेकिन मैं तुम्हें पहचानता हूँ, हमेशा तुम्हें देखता रहा हूँ। आज तुम्हें गोली लगी, तो मुझे लगा कि एक गोली मुझे फिर लग गयी है! मैं बेचैन हो उठा हूँ!

प्रदीप : लेकिन आप अपना परिचय क्यों नहीं देते ?

शेखर : मैं क्या कहूँ कि तुम मेरे बेटे हो!

प्रदीप : आप मेरे पिता हैं ?

शेखर : इसीलिए तो और दर्द होता है तुम्हें चोट खाते देखकर!

प्रदीप : इतने दिनों बाद आपने खोज-खबर ली!

शेखर : मैं कर क्या सकता हूँ बेटे, मैं तो संसार के पार हूँ। तुम सबको तकलीफ सहते देखकर बेचैन हो सकता हूँ, तड़प सकता हूँ, लेकिन कुछ कर नहीं सकता! जिन उद्देश्यों के लिए मैंने अपनी जान दी थी, उनकी हत्या देखकर मुझसे रहा नहीं जाता!

प्रदीप : किन आदर्शों के लिए आपने जान दी थी ?

शेखर : संसार जानता है, तुमने भी जरूर ही पढ़ा होगा—देश को आजाद और सुखी बनाने के लिए।

प्रदीप : आज़ाद तो हम हैं।

शेखर : आजादी के लिए मरना मेरे हाथ में था, लेकिन सुखी बनाने के लिए कुछ करना मेरे हाथ में नहीं है। वह तो मेरे साथियों के हाथ में है, इस देश के जीवित लोगों के हाथ में है।

प्रदीप : वह तो है ही।

शेखर : तुम्हें गोली कैसे लगी ? तुम भी दुकान लूटने गये थे ?

प्रदीप : नहीं पिताजी, मैं तो देखने गया था कि अनाज कहाँ मिल सकेगा—घर में चावल-गेहूँ कुछ था नहीं। खुले बाजार में मिलता नहीं। लोगों को मालूम हुआ कि रतनचन्द्र के गोदाम में अनाज भरा पड़ा है, तो उसे लूटने के लिए लोग निकल पड़े—जीने की समस्या तो सबके सामने है। मैं तो एक किनारे था, लेकिन भीड़ उमड़ती जा रही थी।

*[नेपथ्य से भीड़ की आवाज सुनायी पड़ती है। इन्कलाब जिन्दाबाद! चावल दो, गेहूँ दो, खोलो बन्द गोदाम, आदि। नेपथ्य से ही रतन की आवाज आती है।]*

रतन : *(टेलिफोन पर बोलते हुए)* हैलो, हाँ, मैं रतनचन्द्र बोल रहा हूँ। हाँ, मैंने तो फोन किया था। बहुत बड़ी भीड़ है। मेरे घर और गोदाम की ओर वढ़ती आ रही है।

*[भीड़ की आवाज, उभरती है, नारे सुनायी पड़ते हैं। फिर एकाएक शान्ति।]*

रतन : हाँ-हाँ, मैंने कहा आपसे, भीड़ बहुत उग्र मालूम होती है। हम अपने लिए खतरा महसूस कर रहे हैं—जान-माल का खतरा है हमारे लिए। लोग घर और गोदाम को लूट भी सकते हैं, आग भी लगा सकते हैं। किसी तरह हमारी सुरक्षा का इन्तजाम होना चाहिए। क्या कह रहे हैं? आपने पूरा इन्तजाम कर दिया है? काफी बड़ी संख्या में पुलिस है। ठीक है। देखिए, हम पर कोई खतरा न आने पाये।

*[भीड़ की आवाज उभरती है, गोलियाँ छूटती हैं, कुछ लोगों की 'आह'—दृश्य परिवर्त्तन। पहले की तरह शेखर और रतन आमने-सामने हैं।]*

शेखर : आह!

रतन : अब 'आह' कैसी शेखर? अव तो तुम संसार के उस पार हो!

शेखर : संसार के पार हो जाने से क्या मेरी चेतना शेष हो गयी है? जो गोली प्रदीप को मारी गयी है, वह मुझे लगी है रतन! मेरे आते ही तुमने पूछा था, मेरी छाती पर काला धव्वा कैसा है? काला धव्वा नहीं है ! मेरी छाती से बहता हुआ खून है वह! देखते नहीं हो तुम, इतने वर्षों के बाद मेरा घाव फिर ताजा हो गया है, इसमें से फिर नया खून गिरने लगा है। जब कभी कहीं कोई गोली छूटती है इस देश में, वह मुझे लगती है रतन! जब कोई सीधा-सादा निरीह देशवासी गोली खाकर गिरता है, तब हर बार मेरे मुँह से एक 'आह' निकलती है।

रतन : यह सब मुझसे क्यों कहते हो शेखर?

शेखर : तुमसे क्यों कहता हूँ? गोली तुमने मारी, तो कहने किससे जाऊँ।

रतन : मैंने कहाँ गोली मारी? मैं तो भीड़ के नजदीक भी कहीं नहीं था। मैं तो अपने घर में था उस समय। मैंने कहाँ गोली मारी?

शेखर : गोली अपने ही छूट गयी? और प्रदीप को जा लगी?

रतन : यह तो पुलिस का काम था।

शेखर : पुलिस खुद आ गयी थी?

रतन : उसका काम है लोगों की सुरक्षा।

शेखर : *(व्यंग्य की हँसी के साथ)* यह तुमने ठीक कहा! यह तुमने ठीक कहा रतन! उसका काम है लोगों की सुरक्षा! *(हँसी)*

रतन : लोग जब लूटपाट करने लगें, घरों-दूकानों में आग लगाने लगे, पुलिस कर क्या सकती है?

शेखर : तो, तुम कहना चाहते हो कि इसमें तुम्हारी कोई गलती नहीं है?

रतन : मेरी क्या ग़लती है? मैंने क्या किया है?

शेखर : गोली चली, उसमें तुम्हारा कोई हाथ नहीं है?

रतन : उसमें मेरा हाथ कैसे हो सकता है?

शेखर : लोग पागल हो गये थे जो जुलूस निकाल कर नारे लगा रहे थे?

रतन : यह मैं कैसे कह सकता हूँ?

शेखर : तुम नहीं कह सकते, तो और कौन कह सकता है?

रतन : कुछ लोगों का काम ही है यह सब करते रहना।

शेखर : इस तरह कतराने से काम नहीं चलेगा रतन! सच्चाई का सामना करना होगा तुम्हें। तुम्हें मालूम है, लोग सचमुच तकलीफ में हैं! चारों ओर अनाज की कमी दिखाई पड़ती है। खुले बाजारों में मिलता नहीं। और, तुमने यहाँ अनाज बन्द कर रखा है।

रतन : इसके कई कारण हैं।

शेखर : मैं कारण नहीं जानना चाहता। तुम्हारे यहाँ अनाज का भण्डार रहते हुए लोगों को खाने को न मिले, यह क्या ठीक लगता है तुम्हें?

रतन : सिर्फ मेरे ही यहाँ नहीं, बहुत लोगों के यहाँ अनाज भरा पड़ा है।

शेखर : यही तो मैं कह रहा हूँ। तुम्हारे-जैसे लोगों ने ही देश को मुसीबत में डाल रखा है। भूख के मारे लोग गोदाम लूटने आते हैं, तो उनका क्या दोष है इसमें? गोलियाँ छूटती है, उसमें तुम्हारा दोष नहीं है? प्रदीप को गोली लगी, क्या अपराध किया था उसने?

रतन : मैं क्या कह सकता हूँ?

शेखर : तुम नहीं कहोगे, तो कहेगा कौन? उसका अपराध क्या यही था कि वह बाजार में अनाज खोजने गया था? उसका अपराध क्या यही था कि वह जीना चाहता था? उसका अपराध क्या यही था कि वह अपनी माँ, अपनी पत्नी और बच्चे के जीने-खाने की सुविधाएँ जुटाना चाहता था? क्या इसीलिए मैं शहीद हुआ था कि शहीद के बेटे को अनाज के दानों के लिए गोलियाँ खानी पड़ें? मैं पूछता हूँ तुमसे, हजारों लोगों की जिन्दगी को तुमने परेशानी में क्यों डाल रखा है?

रतन : तुम बार-बार मुझे ही क्यों दोष दे रहे हो? इतने बड़े शहर में, और इतने बड़े देश में सिर्फ मेरे कारण लोग परेशान हैं? जो कर रहा हूँ, सिर्फ मैं कर रहा हूँ?

शेखर : तुम्हारे-जैसे बहुत लोग कर रहे हैं।

रतन : तब सिर्फ मुझसे क्यों पूछते हो?

शेखर : इसलिए कि तुमने मेरे साथ देश की आज़ादी को लड़ाई लड़ी थी, इसलिए कि तुम देश के सेवक हो।

रतन : जब था, तब था।

शेखर : यह क्या कह रहे हो रतन?

रतन : आदमी को ज़माने के साथ चलना चाहिए शेखर! जब त्याग के आदर्शों का ज़माना था, मैं उसके साथ रहा, आज ज़माना बदल गया है!

शेखर : सिर्फ तुम्हारे बदल जाने से?

रतन : नहीं शेखर, पूरा जमाना बदल गया है। तुम्हें सिर्फ पुराने आदर्शों की बातें याद हैं, नये जमाने को तुमने देखा नहीं है। मैं जो कर रहा हूँ, हर आदमी वही कर रहा है। मैंने आज़ादी की लड़ाई इसलिए नहीं लड़ी कि आज़ादी के बाद भी कष्ट भोगता रहूँ, मेरे परिवार के लोग अभावों की जिन्दगी बिताएँ।

शेखर : तुम यहाँ आ गये हो रतन?

रतन : जमाना जहाँ ले आया है, वहाँ आया हूँ।

शेखर : मैं कहता हूँ रतन, लौट चलो अब भी। जिन आदर्शों के लिए हमने संघर्ष किया था, उनकी हत्या न करो।

रतन : मुझे आदेश दे रहे हो शेखर, तुम यह क्यों नहीं सोचते कि आज तुम क्या करते!

शेखर : क्या करता?

रतन : वही, जो मैं कर रहा हूँ, जो हर आदमी कर रहा है। तुम भी ज़माने की हवा के साथ चलते, चोरी करते, बेईमानी करते, चोर-बाजारी करते, किसी-न-किसी तरह अपने परिवार को सुखी बनाने के लिए दूसरों को लूटते।

शेखर : *(आक्रोश के तेज स्वर में)* रतन, बन्द करो बोलना! अपने को सही साबित करने के लिए मुझको अपने में शामिल करने की कोशिश मत करो। जिसके लिए मैं मरा, उसकी सुख-समृद्धि के लिए मैं बार-बार मरूँगा, अपने आदर्शों की हत्या कभी नहीं होने दूँगा।

रतन : ये शब्द हैं, केवल शब्द! भाषण देना मुझे भी आता है।

शेखर : मैं कहता हूँ, चुप रहो। अधिक कहा, तो तुम्हारा गला घोंट दूँगा। तुम समझते हो कि मैं मर गया हूँ, मैं कुछ कर नहीं सकता, लेकिन अभी मेरे हाथों में ताकत है, अभी मैं तुम्हारी हत्या कर सकता हूँ, गला घोंट सकता हूँ। देश को बर्बाद करने के लिए तुम्हारे जैसे लोगों को जिन्दा रहने की कोई जरूरत नहीं है। *(आगे बढ़ कर रतन का गला पकड़ता है)* मैं तुम्हारा गला घोंट दूँगा।

रतन : *(क्रमशः ऊँची होती हुई आवाज)* आह! आह! मैं मरा, आह!

*[सहसा अन्धकार। रोशनी आती है, तो शेखर रंगमंच पर नहीं रहता। रतन काँपता हुआ दिखाई पड़ता है। एक ओर से उसका पुत्र विजय तेजी से प्रवेश करता है।]*

विजय : क्या है पिताजी! क्या हुआ?

रतन : *(घबड़ाया हुआ)* कौन? कौन हो तुम?

विजय : मैं विजय हूँ पिताजी, मैं विजय हूँ! आप इस तरह चिल्ला क्यों उठे? इतना घबड़ाए हुए क्यों हैं?

रतन : मैं डर गया हूँ बेटे, मैं डर गया हूँ! एक भयानक सपना देख रहा था। मैं डर गया हूँ।

विजय : कैसा सपना पिताजी?

रतन : भयानक सपना! एक बेचैन आवाज़ का सपना! यह आवाज़ अभी भी मेरे कानों में गूँज रही है। मुझे डर लगता है। मुझे डर लगता है बेटे, मुझे डर लगता है!

*[पर्दा]*

□